डेमोक्रेसी... डेमोक्रेसी

हिन्दी ADDA

मनीष वैद्य

डेमोक्रेसी... डेमोक्रेसी

आषाढ़ महीने की तेज हवाओं की तरह यह बात कुछ ही देर में पूरे इलाके में फैल गई थी। प्रधानमंत्री इस इलाके का जायजा लेने आ रहे हैं। पहली बार हरिया ने सुना तो उसे भरोसा ही नहीं हुआ। चुनाव का मौसम या कोई आपदा का वक्त होता तो शायद

बात समझी भी जा सकती थी। 65 सालों में ऐसा कभी नहीं हुआ था। फिर अब ऐसी क्या बात हो गई कि उन्हें खुद यहाँ आना पड़ रहा है। उसने कई बार सोचा पर कोई ऐसा कारण नजर नहीं आया। वह जितना ही सोचता, उलझता जा रहा था।

उसे लगा, शायद मास्टरजी जानते हों। वह डूंगरी उतरकर दूसरे फलिये के स्कूल में गया। फिर राम-राम करने के बाद उसने मास्टर जी से पूछा - सुना है, प्रधानमंत्री आ रहे हैं। क्यों आ रहे हैं, मेरा मतलब ऐसा क्या काम आ गया। अभी चुनाव भी नहीं हैं?

मास्टर जी ने उसे पहले ऊपर से नीचे तक देखा। जैसे कोई अजूबा देख रहे हों। फिर मुँह में रखा गुटखा थूँकते हुए कहा - क्या मैं प्रधानमंत्री का दोस्त हूँ या उनका पीए। मुझे क्या सपना देते हैं वे। मुझे क्या मालूम। तू क्यों इस संताप में दुबला हुए जा रहा है भाई। इतनी गर्मी और कड़ी धूप में यही पूछने तू पैदल इतनी दूर यहाँ तक चल कर आया है। बड़े लोगों की बड़ी बात। वे हमारी-तुम्हारी समझ में नहीं आती। होगा उन्हें कोई काम। जरूरी है क्या पहले तुझे काम बताकर यहाँ आए कोई।

हरिया बुरी तरह झेंप गया मास्टर जी की बातों से। अपने पर ही उसे गुस्सा आया कि क्यों आ गया वह यह सब पूछने और क्या करेगा जानकर। उसे मास्टर जी पर गुस्सा आया फिर लगा शायद उन्हें भी पता ना हो। उसने चुपचाप निकल जाना ही बेहतर समझा। रास्ते में उसे दीवान जी मिले। एक-एक को बुला-बुला कर खेतों की पावतियाँ बाँट रहे हैं। भीड़ लगी है उनकी खाट के पास। उसे हैरत हुई, इस तरह खुद यहाँ आकर दे रहे हैं बिना पेशगी से पावतियाँ। उसे पता है किसानों की हालत खराब हो जाती है तहसील के चक्कर काट-काट कर, तब भी नहीं मिलती कई बार। उनसे भी पूछना चाहता था हरिया यही सवाल पर दीवान जी ने भी इसी तरह कुछ कह दिया तो...।

वह लौट आया अपने फलिये में। कोई उसकी बात ही समझने को तैयार नहीं है। अब सोचो प्रधानमंत्री आ रहे हैं, कहीं उनका उड़नखटोला हमारे ही फलिये में उतर गया तो वे वहाँ मेरे सिवा किससे बात करेंगे। अब बड़े लोगों से कैसे और क्या बात करना यह तो किसी से पूछना ही पड़ेगा ना। अब ऐसे में उससे प्रधानमंत्री कुछ पूछ लें और वह सही जवाब नहीं दे पाया तो फिर।

ऊपर आसमान से जैसे लाय बरस रही है। लू के थपेड़े जैसे जान लेने को तैयार हैं। धरती तप कर तवा हो रही है। लोग भट्टी के अंगारों की तरह तपतपा रहे हैं। हर तरफ ऊसर सपाट, कहीं कोई हरापन नहीं। कोई पत्ता तक हरा नहीं है। दूर-दूर तक फैली छोटी-छोटी डूँगरियाँ और ऊँचे-नीचे मैदान। छोटे-छोटे पथरीले खेत और छितरी-छितरी सी छोटी बस्तियाँ फलिये। पसीना रह-रह कर उसके काले और नंग-धड़ंग शरीर से चू रहा है। धूप से शरीर पर पसीना चमक रहा है। फलिये के दस-बारह घरों में से ज्यादातर तो रोजी-रोटी की जुगाड़ में महीनों पहले ही मालवा के कस्बों-शहरों की ओर जा चुके हैं। उन घरों में बचे हैं तो बूढ़े-बुढ़ियाएँ। ये जैसे-तैसे अपने आखरी दिन काट रहे हैं। इन दिनों में इनके पास होती है कुछ रसद और पथरा चुकी आँखों में अपनों के सकुशल लौट आने का इंतजार।

हरिया 30-35 साल का सामान्य कद-काठी का साँवला सा युवक। शरीर गठा हुआ लेकिन चेहरे पर कोई चमक नहीं। गालों में गड्ढे और अंदर की ओर धँसी हुई मिचमिची आँखें। नंग-धडंग शरीर पर एक धोतीनुमा कपड़े की लंगोटी सी बांधे रखता। कहीं बाहर जाना होता तो बंडी पहन लिया करता।

हरिया हर वक्त कुछ न कुछ सोचता रहता, जैसे सारे जमाने की मुसीबतों की जड़ एक दिन उसी को खोजना हो। वह अपने फलिये में उँकड़ू बैठा है घुन्ना सा। ऊपर से वह भले ही घुन्ना दिखाई दे पर उसके अंदर ही अंदर कट्ठी घनमथान चल रही है। आँधी-अंधवाल चल रही है। दिमाग जैसे छाछ बिलौने की तरह घूम रहा है उसका। क्या करे और क्या न करे। इसी में उलझा है वह।

हरिया का क्या होगा, उसे खुद नहीं पता। सवालों के बवंडर हैं कि पीछा ही नहीं छोड़ रहे उसका। कोई एक चिंता हो तो कोई निकाल भी करे उसका। अब यहाँ तो हर दिन एक नया सवाल है उसके सामने। आज का दिन निकले तो कल की चिंता। कल निकले तो परसों। उसे इस तरह खानाबदोशों की तरह रोटी के लिए यहाँ-वहाँ भटकना अच्छा नहीं लगता, और फिर वहाँ भी काम मिल ही जाए जरूरी तो नहीं। ओने-पौने दाम पर हाड तोड़ मेहनत। न रहने का ठिकाना और न खाने का ठौर। ऐसे में थोड़ा बहुत कमा भी लाएँ तो कितने दिन चलेगा। गरीब के घर तो हर दिन चूल्हा भर जलाने

में ही पैसा ऐसे खिसकता है जैसे मुट्ठी से रेत। पर जाना तो पड़ेगा उसे इस बार भी। कब तक औरत और बच्चों को दिलासा देता रहेगा इसी तरह।

भूखला तो भूखला खरी पर कब तक... अभी तो बारिश आने में पूरे चार महीने हैं। कुछ इंतजाम तो करना ही पड़ेगा न। झमिया भी साथ जाना चाहती है। पर क्या आसान है परिवार को पोटली की तरह साथ ले जा पाना। काम नहीं मिला तो अकेला कहीं भी पड़ा रहूँगा पर बच्चों को कैसे भूखा रख सकूँगा। कितनी महँगाई है उधर और कैसे लोग, वह जानता है सब। नहीं ले जाएगा बच्चों को। यहीं रह लेंगे कुछ दिन। फिर वह एकाध बार आ कर दे जाएगा कुछ रुपये। झमिया जबर-जंगार औरत है। खुद रह भी लेगी और बच्चों को भूखा भी नहीं सोने देगी। यहाँ की चिंता नहीं रहेगी उसे। शहर नहीं जाएगा वह, कस्बे में ही कुछ कर लेगा।

वह कमाने चला जाएगा तो यह प्रधानमंत्री से बात करने की परेशानी का भी निकाल लग जाएगा। वह रहेगा ही नहीं तो फिर कैसा सोच-विचार।

आज कारवानु काल ने माथे ना राखवूँ...। सोच कर पथारी उठाये हरिया आ गया था कस्बे के बस स्टैंड पर। उसने पसीना पोंछने के लिए पथारी से पंछा निकला। पथारी में कुछ जरूरी चीजों के साथ झमिया की कुछ सीखें भी बँधी थी, उसे हँसी आ गई। या तो वह उसे बच्चा समझती है या खुद को बड़ी समझदार। अब मैं क्या पहली बार आया हूँ जो सीखें देती रहती है। फिर न जाने क्यों प्यार आ गया उसे अपनी घरवाली पर। भोली है, डरती है जमाने से। दिन-रात खटती फिरती है, उसे कभी आराम ही नहीं दे पाया। अबकी बार उसके लिए कुछ ऐसा ले जाऊँगा कि देखते ही खिल उठेगा उसका चेहरा।

कुछ वक्त बाद उसे काम भी मिल गया। बस स्टैंड के पास ही एक होटल पर। चाय-नाश्ता देना, ग्राहकों से आर्डर लेना, रसोई में काम करना, टेबल साफ करना, बर्तन साफ करना जैसे और भी कई काम। सुबह से देर रात तक। डेढ़ हजार रुपये महीने पर बात बन गई। वह मन लगाकर काम करने लगा। सोचता था, महीना पूरा होते ही एक बार हो आएगा अपने फलिये। झमिया इतने सारे रुपये एक साथ देखेगी तो कितनी खुश हो जाएगी। इससे कितने दिनों की रोटी का बंदोबस हो जाएगा। वह

अपने ऊपर कुछ भी खर्च नहीं करता। वहीं होटल में बचा-खुचा खा लेता और रात में वहीं होटल के बाहर सोया रहता। उसके दिन कट रहे थे उम्मीद में। उम्मीद से उसकी आँखों में कई सतरंगी सपने झिलमिलाने लगे थे।

काले रंग की काँचली, उस पर धानी लुगड़ा, काले घाघरे पर तीन सर का चम-चम करता चाँदी का कंदोरा, पैरों में रून-झून करते पाजेब, हाथों और चेहरे पर गोदने, माथे पर चाँदी का रखडी झुम्मर, मुँह में पान का बीड़ा, नाक में नथ और गले में चाँदी की जबरी माला... अपनी घरवाली झमिया को उसने इस रूप-सिंगार में देखा तो जैसे निगाह ही नहीं हटा पाया उससे। वह इठलाती पनिहारिन सी लौट रही है घड़ों में पानी लेकर। जैसे झाड़ियों में खिला कोई फूल हो। जैसे पहाड़ी नदी हो। उसे लगा कि उसके सिंगार और चटख रंगों से यह ऊसर सपाट बंजर धरती भी खिल कर हरहरा उठी है। जैसे नदियाँ घूम आई हों इस तरफ, जैसे फूलों के बगीचे झूम रहे हों।

उसे लगा यह तो वही नार है जिसके पीछे चार कोस पैदल चलकर भगोरिया के हाट में उसे पान का बीड़ा खिलाया था और गाल पर गुलाल मल दिया था। उस समय वह शर्म से गुलाबी हुई जा रही थी। उसके साँवले रंग में गुलाबी आब घुल रही थी। तब हरिया का डील-डौल भी कोई कम नहीं था। वह गबरू जवान था। वह उसे मना नहीं कर सकी थी। तब से ही उसकी किस्मत से बँध गई थी वह। भोला नॉ भगवान से... दोनों ने नई घिरस्ती बसाई और साथ निकल पड़े थे उसे सँवारने में।

वे दिन याद करता है हरिया तो अब भी जैसे महुआ सा छा जाता है उस पर। ताड़ी के नशे की तरह के दिन थे वे। जैसे मांदल की थाप सुनाई देती थी हर तरफ उसे। वे दोनों उन दिनों जैसे वहाँ नहीं थे। जैसे कोई नदी बहती थी उनके अंदर। वे दिन जैसे हवा पर सवार थे, कितनी जल्दी बीत गए वे दिन।

इधर इलाके में प्रधानमंत्री के आने की तारीख का ऐलान होने के साथ ही अचानक से लोगों और साहबों की आवाजा ही बढ़ गई। सुबह होते ही गाड़ियाँ घाट नीचे जाना शुरू हो जाती। उस इलाके में जाने के लिए इसी कस्बे से होकर गुजरना होता था। कस्बे की होटल से हरिया रेले की तरह जाती बड़ी-बड़ी गाड़ियों का कारवाँ देखता रहता। उसे मलाल भी होता कि आज वहाँ होता तो यह नजारा देख पाता, पर उसके इस मलाल पर

रुपयों की खनक कहीं भारी पड जाती। लू के थपेड़ों और जान लेवा गर्मी में भी साहब और उनके अर्दली, मातहत सारे भागदौड़ में ऐसे जुटे थे जैसे बिटिया की बारात आने वाली हो। किसी को फुर्सत नहीं थी। न बात करने की और न चैन से साँस लेने भर की। हरिया को अब भी यह पता नहीं चला था कि वे आखिर इस तपती उजाड़ धरती पर आ क्यों रहे हैं, ऐसी गर्मी में? ऐसे में तो उन्हें कहीं ठंडी जगह जाना चाहिए जैसे किसी पहाड़ी जगह पर, कहीं झील किनारे, कहीं घने जंगलों में, वैसे उनका दफ्तर भी तो ठंडा ही रहता होगा ना। खैर, बड़े लोगों की बड़ी बात। कौन जान पाया अब तक।

अच्छी कट रही थी हरिया की। उसे काम करते हुए पंद्रह दिन से ज्यादा हो गए थे और थोड़े ही दिन में उसे डेढ़ हजार रुपये मिलने वाले थे। इससे उसकी खुशी बढ़ती ही जा रही थी।

तभी एक ऐसा वाकिया हो गया कि हरिया को अपनी किस्मत चमकती हुई सी लगी। उसे लगा कि एक कदम और बढ़ा तो शायद वह आसमान को भी छू लेगा। उसके कदम धरती पर नहीं पड़ रहे थे। जैसे धरती सिकुड़ रही थी। जैसे सितारों से चमकता आसमान उससे कदम भर की दूरी पर रह गया था। जैसे उसके मन में खुशी समा नहीं रही थी। उसने तो ऐसा कभी सपने में भी नहीं सोचा था।

हुआ यूँ था कि प्रधानमंत्री के कार्यक्रम की खबर दिखाने के लिए एक टीवी रिपोर्टर और उसका कैमरामेन कस्बे की उसी होटल पर आए, जहाँ हरिया काम करता था। हरिया ने ही उन्हें चाय-नाश्ता दिया था। होटल का बिल अदा करते वक्त रिपोर्टर ने होटल मालिक से पूछा - क्या यहाँ कोई आदमी हमें मिल जाएगा जो इधर के क्षेत्र से वाकिफ हो और कैमरे का स्टैंड उठा कर हमारे साथ ही रहे दो दिन तक। हम जाते समय उसे यहीं छोड़ जाएँगे। उसे पाँच सौ रुपये भी दे देंगे। इसी एक पल को हरिया ने जैसे लपक लिया था। जैसे पेड़ से पका हुआ फल सीधे उसी के हाथ में टपका हो। होटल मालिक काम का बोझ बताकर उसे जाने नहीं देना चाहता था पर हरिया ने उसे जैसे-तैसे मना ही लिया। उसे कुछ दिनों से अपने फलिए की याद भी बहुत सता रही थी। उसे अपने इलाके की सैर भी मिल रही थी और पाँच सौ रुपये भी।

वह करीब-करीब दौड़ते हुए घुस गया उस बड़ी सी गाड़ी में। आगे ड्राईवर के पास कैमरामैन बीच की सीट पर रिपोर्टर और सबसे पीछे हरिया। गाड़ी क्या थी, जैसे कोई रथ। नरम गद्देदार सीट, बाहर जैसी गर्मी का अंदर कोई असर नहीं था। अंदर ठंडी हवाएँ चल रही थी। पंखे से भी ठंडी। इतनी कि शरीर कँपकँपा जाए। रिपोर्टर घुन्ना सा था और किसी से कुछ नहीं बोल रहा था। जब कभी उसके मोबाइल पर कोई घंटी बजती तभी वह बात करता था और फिर देर तक करता ही रहता। कुछ देर बाद गाड़ी वन विभाग के एक बड़े से डाक बंगले पर जाकर रुकी।

डाक बंगला अंदर से उसने पहली ही बार देखा था। किसी महल से कम नहीं था वहाँ का नजारा। पलंग पर नरम गद्देदार करीने से लगे बिस्तर। मुलायम सोफे। चम-चम करता फर्श, अंदर ही टट्टी-मोरी सब और उसमें गरम-ठंडा जैसा चाहो पानी भी। अंदर ऐसी ठंडी हवा कि जैसे बर्फ के पहाड़ हों वहाँ। घंटी बजाते ही अर्दली हाजिर। जो चाहे सो माँग लो उससे, पल भर में हाजिर। पानी, चाय, नाश्ता, खाना सब। उसे हैरानगी हुई कि इसी इलाके में रहने के बाद भी उसने कभी यह जगह अंदर से देखी क्यों नहीं, कभी ध्यान ही नहीं गया उसका इस तरफ या कभी इस तरह सोचा ही नहीं। सच बड़े लोगों की संगत-सोहबत से ही कितना कुछ सीखने-देखने को मिलता है। उसे लगा जैसे उसने अब तक कुछ देखा ही नहीं। जैसे अब तक की जिंदगी ऐसे ही गुजार दी।

रिपोर्टर को यहाँ की ठंडी हवाओं के बाद भी गर्मी का एहसास हो रहा था। शायद वह और भी ठंडी जगह रहता रहा होगा। दोपहर के खाने के बाद वे लोग इलाके की ओर जा रहे हैं। लू के थपेड़ों को करीब-करीब चीरती हुई गाड़ी आगे बढ़ती जा रही है ऊँची-नीची डूंगरियों से उस ऊसर सपाट इलाके में। नंग-धड़ंग लोग, यहाँ-वहाँ बने छोटे-छोटे फलिये, खाट पर अधलेटे पुरुष, काम में व्यस्त अपने फटे हुए कपड़े सँभालती औरतें, बकरियों-मुर्गियों के बीच खेलते बच्चे। सब कुछ तेज भागती गाड़ी के शीशों से पीछे छुटते जा रहे हैं लगातार।

हरिया रिपोर्टर को भीलों के संसार गढ़े जाने की कहानी सुनाना चाहता था। फलिये में वह अकेला था जिसे यह लोक कथा याद थी। वह बताना चाहता था कि किस तरह इस लोक कथा में धरती पर लोगों ने रहना शुरू किया। सबसे पहले दूधा समुद्र और उसकी रानी उडछा कुँवर की बेटी वीलूबाई ने चाक पर मिट्टी रख कर इस संसार की रचना

की। उसने सबसे पहले भोला महादेव को गढ़ा। फिर गढ़े इशिवर-परबत, सूरज-चाँद, बैल, भैंस का पाड़ा, कीड़े-मकोड़े, भूत और आखिर में मनुष्य। उसने नाप कर धरती को गढ़ा। पर ये सभी चीजें कच्ची थी और इन्हें अघुलनशील होने के लिए एक बार फिर चील के गर्भ से जन्म लेना पड़ा। धीरे-धीरे बच्चे बढ़ने लगे लेकिन धरती के बढ़ने की रफ्तार तो उससे भी तेज थी। इससे सब चिंतित हो गए। महादेव ने उस पर लोहारों से खंभे रखवाए, बहुत सी मिट्टी डाली, चींटियों से बीज लेकर पेड़-पौधे लगवा दिए। फिर भी धरती का बढ़ना नहीं थमा तो हार कर महादेव वीलू बाई के पास गए। वीलू बाई ने धरती जितनी बड़ी रागस मछली समुंदर में छोड़ी तब कहीं जाकर धरती का बढ़ना थमा। आज भी शादी-ब्याह में भीलों के बडवा सबसे पहले पूर्वजों यानी पिठौरा को ही पूजते हैं। वह सुनाना चाहता है उसे उनके रहन-सहन, उनकी तकलीफों और दुखों के बारे में पर रिपोर्टर उससे कोई बात नहीं करता। वह किसी से बात नहीं करता, वह तो सिर्फ अपने मोबाइल से ही बात करता है।

हरिया का दिमाग अभी वहाँ नहीं है, उसका दिमाग तो अपने फलिये में है। काश कि गाड़ी उसके फलिये तक जाए। कैसे देखेंगे लोग उसे। झमिया, कैसे देखेगी उसे। शायद उसे इस तरह सामने देख कर शरमा ही जाए, गाड़ी चर्र करते हुए अचानक एक फलिये के सामने रुक गई है। जैसे हरिया के विचारों को भी ब्रेक लगा हो यकायक। यह फलिया उसका देखा हुआ था पहले से। उसके फलिये से थोड़ा ही पहले। वह एक पल को तो हैरत से ठिठक ही गया। यह आज इतना बदला-बदला सा क्यों लग रहा है जैसे किसी ने धो-पोंछ दिया हो? एक सी लिपी-पुती दीवारें, साफ-सुथरे कपड़ों में बने-ठने यहाँ के लोग। यहाँ-वहाँ दौड़ते सैकड़ों अफसर और उनके मातहत। उसने कैमरा स्टैंड उठाया और कैमरामैन के पीछे-पीछे चल दिया। रिपोर्टर अफसरों से बात कर रहा था शायद अँग्रेजी में।

सर... कोई मातहत चिल्लाया था - सर ये बकरियाँ और मुर्गियाँ सर...

क्या...। बकरियाँ और मुर्गियाँ...। क्या हुआ अब...? अफसर झल्लाया था।

सर ये यहाँ-वहाँ लेंडियाँ कर रही है सर... सारा गुड़ गोबर कर देगी सर...। मातहत अपनी बात करीब-करीब हाँफते हुए कह रहा था।

अब ये नई मुसीबत...। क्या हो सकता है... तुम्ही सोचो न - अफसर फिर झल्लाया। जी सर मैं मैनेज करता हूँ सर... मातहत फलिये वालों की ओर मुखातिब होते हुए बोला - इन्हें सब अपनी-अपनी टापरियों के पीछे जाकर बाँधो...। जल्दी करो नहीं तो वेटेनरी वालों से उठवा कर कहीं और भिजवा दूँगा...। समझे चलो जल्दी करो.. फास्ट-फास्ट... फलिये के लोग अपनी बकरियों और मुर्गे-मुर्गियाँ टापरियों के पीछे की ओर ले जा रहे हैं। अफसर और मातहत जुटे हैं फलिये को चमकाने में। सब व्यस्त हैं। अब तक किसी ने इस फलिये में आना तो दूर इसके बारे में सोचने की भी कोशिश नहीं की थी। इसलिए काम बहुत ज्यादा था और समय बहुत कम। कोई उन्हें कुछ जबरन बाँट रहा था तो कोई उनसे अँगूठे लगवाने में व्यस्त था। कोई उनके शरीर की जाँच कर रहा था तो कोई उन्हें खेती के नए तरीके रटवा रहा था। कोई उन्हें साफ-सफाई सिखा रहा था तो कोई उन्हें बातचीत के तौर-तरीके सीखा रहा था। उधर स्कूल में बच्चे साफ-सफ्फाक यूनिफार्म में अँग्रेजी के टूटे-फूटे शब्द सीख रहे हैं।

फलिये के लोग इस अजूबे मेले को विस्मय से देख रहे थे। जैसे गेले गाँव में ऊँट आ गया हो। कुछ देर वहाँ रुककर और कुछ जरूरी शॉट बनाकर अँधेरा होने से पहले ही वे वापस डाक बंगले लौट आए। पहले काँच के ग्लास में पानी फिर नाजुक सी चीनी के प्यालों में फीकी और लाइट चाय। रिपोर्टर और कैमरामेन बारी-बारी नहाए। फिर शाम घिरने लगी तो लॉन में कुर्सियाँ डलवा लीं। रिपोर्टर ने बियर की बोतल निकाली और ग्लास में ढालकर वह घूँट-घूँट पीने लगा। इस दौरान भी वह लगातार मोबाइल पर बातें कर रहा था। लान में अब बियर की महक अपना रंग जमाने लगी थी। न जाने क्यों आज हरिया को बियर की महक महुए और ताड़ी से बेहतर लगी। धीमी-धीमी, मद्धिम सी।

रिपोर्टर अब भी मोबाइल पर लगा था। हरिया ने ध्यान से सुना। रिपोर्टर किसी से आदिवासियों की स्थिति को लेकर बातें कर रहा था। उसे ज्यादा कुछ समझ नहीं आया पर वह चाहता था कि एक बार रिपोर्टर उससे बात तो करे। वह बताएगा उसे सही-सही स्थिति कि वे कैसे जीते हैं और क्या खाते हैं। कि क्यों हर साल उन्हें बाहर कमाने जाना पड़ता है। पर रिपोर्टर उससे बात तो दूर देखने तक को तैयार नहीं था।

एक दो बार उसने बात करने की कोशिश भी की पर रिपोर्टर ने मोबाइल पर बात करते हुए ही उसे ऐसे देखा कि फिर हिम्मत ही नहीं कर सका।

रिपोर्टर जब बात कर रहा था तो उसका ध्यान गया कि वह कुछ खास शब्द बार-बार बोल रहा था और ये शब्द उसने पहले भी कई बार सुने थे। उसे याद आया। हाँ, लंबे कुरते और जींस वाले सुधारकों की चंदर भाई के ओसारे में होने वाली मीटिंग में। वे कहते थे - यह सब गलत हो रहा है, इसे सुधारने की जरूरत है पर उससे पहले हमें जागरूक होना पड़ेगा। सुधारक संदीप भाई पहले हर महीने आते थे पर इधर लंबे समय से नहीं आए थे। चंदर भाई से पूछा था उसने एक बार तो उन्होंने बताया था कि अब उन्हें कुछ और काम मिल गया है, इसलिए अब इधर नहीं आते।

पर संदीप भाई भी ऐसी ही बोली बोलते थे और हाँ वही जाने-पहचाने शब्द। उसने दिमाग पर जोर दिया। उसे उन शब्दों को बोलने में दिक्कत हो रही थी पर वह उन्हें पहचान रहा था। टराईबल, अवेरनेस और डेवलपमेंट उसने बहुत सुने थे। पर यहाँ उसे एक नया शब्द भी सुनने को मिला - डेमोक्रेसी। रिपोर्टर किसी से कह रहा था - इस सबका कारण यही डेमोक्रेसी है न।

हरिया को पहली बार डेमोक्रेसी का महत्व पता चला। अच्छा तो यह है सबकी जड़। डेमोक्रेसी। वह रटने लगा। रटता रहा देर तक। कितनी आसान बात थी पर इसे अब तक वह कभी समझ ही नहीं पाया।

सुबह वे उसी फलिए में हैं। जब प्रधानमंत्री का काफिला उसने देखा तो उसे अपनी आँखों पर यकीन ही नहीं हुआ। क्या तो लोग और क्या तो गाड़ियों की रेलमपेल? क्या तो इंतजाम और क्या तो पुलिस। क्या तो नेता और क्या तो अफसर। ठठ के ठठ यहाँ से वहाँ तक। जिधर देखो उधर बस सिर ही सिर नजर आते थे। इधर के लोग कम और उधर के ज्यादा। उधर के लोग क्या बता पाएँगे उन्हें यहाँ के बारे में। ये तो आज ही आएँ हैं यहाँ पहली बार। ये तो शायद यहाँ के लोगों की बोली भी नहीं जानते।

हरिया को लगा कि उसे ही बताना होगा सब कुछ। उसने नहीं बताया तो कौन बताएगा। ऐसा सोचकर वह उनकी तरफ बढ़ने लगा। भीड़ को चीरते हुए जगह बना

रहा था वह। वह घुसता जा रहा था लोगों के उस रेले में। जैसे कोई बाढ़ से गुजर रहा हो। वह सबको परे धकेलकर बढ़ जाना चाहता था आगे। वह उनके पास जाना चाहता था किसी भी तरह।

वह कुछ ही दूर पहुँचा होगा कि किसी की निगाह उस पर पड़ी। निगाह पड़ते ही हरिया की गर्दन उसके हाथों में थी। देखते ही देखते कई हाथ उसकी देह पर थे। किसी ने उससे कड़क आवाज में पूछा - कहाँ जा रहा है इस तरह। उसने सच बात बता दी - प्रधानमंत्री के पास। क्यों क्या काम है? काम... इस सवाल पर वह हड़बड़ा गया। फिर यकायक जैसे कुछ याद आया। उसे लगा कि यही शब्द अब उसे बचा सकते हैं। उसने कहा - डेमोक्रेसी... डेमोक्रेसी।

उसके आस-पास वर्दी वालों ने घेरा बना लिया है। उसे भीड़ से बाहर खींचकर ले आया गया है। वह जोर-जोर से चीख रहा है - डेमोक्रेसी... डेमोक्रेसी। वह समझ नहीं पा रहा कि पढ़े-लिखे लोगों की बोली बोलने पर भी ये उसे क्यों ले जा रहे हैं? उसे एक गाड़ी में चढ़ा लिया गया है। अब गाड़ी तेजी से सायरन बजाते हुए दौड़ रही है। सायरन की आवाज दूर-दूर तक गूँज रही है और वह अब भी पागलों की तरह चीख-चीख कर कह रहा है - डेमोक्रेसी... डेमोक्रेसी।

https://www.hindiadda.com/democracy-democracy/

https://www.hindiadda.com/democracy-democracy/